Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2025, E-Journal, Vol. I, Issue L (50), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

आँसू का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन

डॉ. निशा शुक्ला तिवारी*

* प्राध्यापक (हिंदी) आदित्य इंजीनियरिंग कॉलेज, सतना (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – संसार में सब चीजें एक सी नहीं हैं उनमें भिन्नता है। यही भिन्नता सब चीजों को एक दूसरे से विशेष बनाती है। सब मनुष्य भिन्न हैं, इसीलिए सब मनुष्य विशेष हैं। हर-एक मनुष्य के कार्य करने का तरीका अलग है। इसी 'तरीके' को शैली कहा गया है। प्रत्येक व्यक्ति के बोल-चाल, उठने-बैठने, हाव-भाव जैसी छोटी-छोटी गतिविधियों में भी इस शैली का अंतर स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। वास्तव में शैली की इन्हीं भिन्नताओं से हम अलग-अलग व्यक्तियों से अलग-अलग तौर से व्यवहार कर पाते हैं। हम उन्हें अलग-अलग रूप में पहचान पाते हैं। शैली की यही भिन्नता व्यक्ति की भाषा में परिलक्षित होती है और भाषा के माध्यम से कविता में उतर जाती है। इसीलिए अलग-अलग कवियों की कविताओं में हमें अलग-अलग शैली देखने को मिलती है। भक्ति काल में कबीर, सूर और तुलसी की कविता की कुछ पंक्तियाँ पढ़ कर ही बताया जा सकता है कि कौन सी रचना किसकी है। छायावाद के कवियों में भी यह शैली की भिन्नता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। प्रसाद के स्वर और पंत के स्वर में भेद स्पष्ट रूप से हो सकता है। या निराला और महादेवी की ही कविता को पढ़ कर ही यह शैली भेद बताया जा सकता है। यही नहीं एक ही कवि की भिन्न-भिन्न रचनाओं में भिन्न-भिन्न शैलियाँ देखने को मिलती हैं। प्रसाद की आँसू की शैली, कामायनी की शैली से भिन्न है। यह भिन्नता कितनी है, किन आधारों पर है, शैली के कौन से तत्व दो रचनाओं, या दो कवियों को भिन्न साबित करते हैं इसी का अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। छायावाद के महत्वपूर्ण कवि जयशंकर प्रसाद की कृति 'आँसू' को आधार बना कर यहाँ शैलीवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

'शैली' शब्द की व्युत्पत्ति यदि भारतीय वाङ्मय में तलाशी जाय तो यह शब्द हमें 'शील' के रूप में मिलता है। जिसका अर्थ चरित्र, स्वभाव, आचरण आदि की ओर इंगित प्रतीत होता है। इस बात से यह पुष्टि हो जाती है कि किसी व्यक्ति का आचरण, उसका स्वभाव, व्यापक अर्थों में उसका चरित्र आदि उसकी कार्य-शैली को प्रभावित करते हैं। इसी तरह किसी कविता में हमें रचनाकार की व्यक्ति-शैली की आभा मिल जाती है। और समाज के स्तर पर देखा जाय तो प्रत्येक व्यक्ति का आचरण,स्वभाव और चरित्र अधिकतर परिस्थितियों में उसके परिवेश से संचालित होता है। अर्थात् कोई भी रचना केवल रचनाकार की शैली की ही सूचना नहीं देती वरन् उस समाज की भी शैलीगत विशेषताओं को परिलक्षित करती है।

'शैली' शब्द अंग्रेजी में 'स्टाइल'(Style) निकट है। जो कि लैटिन शब्द 'स्टाइलस' का परवर्ती विकसित रूप है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने अपनी पुस्तक 'रीतिविज्ञान' (पृष्ठ 14) में अंग्रेजी शब्द 'स्टाइल' के लिए 'रीति' शब्द प्रयोग में लिया है। जैसे यह बात शुरू में ही स्पष्ट कर दी गई है कि 'शैली' का साधारण भाषा में अर्थ है – ढंग, जीवन-यापन की पद्धति, बोलने-लिखने की शैली आदि। शैली शब्द का प्रयोग जीवन के तमाम अंगों के साथ होता है। यही बात सत्यदेव चौधरी अपनी पुस्तक 'शैलीविज्ञान और भारतीय काव्यशास्त्र' (पृष्ठ-9) में लिखते हैं कि – 'शैली' शब्द का तात्पर्य – कवि का रचना-प्रकार है, जो उसके द्वारा प्रयुक्त पदों एवं वाक्यों के माध्यम से अथवा भाषा के माध्यम से प्रकट होता है।'

शैलीवैज्ञानिक अध्ययन का आरम्भ एक अनुशासन के रूप में पाश्चात्य काव्यशास्त्र का ही निदर्शन है। शैली विज्ञान काव्यशास्त्रीय अध्ययन का वह अनुशासन है जो भाषा का विचलन, समांतरता, चयन आदि उपयुक्त साधनों या आधारों पर विश्लेषण करता है। यह सैद्धांतिक भी हो सकता है, अनुप्रयुक्त या व्यवहारिक भी। शैलीविज्ञान साहित्य की वस्तुनिष्ठ व्याख्या का विज्ञान है। आधुनिक शैलीविज्ञान पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र में 'स्टाइलिस्टिक्स' के समानार्थी रूप में प्रचलित हुआ है। पाश्चात्य विद्वान टर्नर के अनुसार 'शैलीविज्ञान शैली का विज्ञान या शास्त्र है। शैलीविज्ञान का अर्थ है – शैली का अध्ययन। वैज्ञानिक या कम से कम व्यवस्थित अध्ययन, जैसा कि व्युत्पत्ति से ध्वनित होता है।'

डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार 'झरना', 'लहर', 'आँसू' तथा 'कामायनी' प्रसाद के काव्य-सृजन के चार सोपान हैं। अपनी उच्चकोटि की वेदना, अनूठी मधुरता, तीव्र अनुभूति तथा अपनी प्रौढ़ कला में 'आँसू' आधुनिक समय की महान कलाकृतियों में एक है।' इस आधार पर यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि 'कामायनी' के बाद 'आँसू' प्रसाद की सबसे महत्वपूर्ण काव्य रचना है। जहाँ तक हृदय की गहरी विरह वेदना को स्वर देने की बात है वहाँ आँसू, कामायनी से भी आगे की रचना मानी जाएगी।

'आँसू' विरह प्रधान काव्य है। भारतीय विरह-काव्य परम्परा में खड़ी-बोली में रचित यह अपने ढंग का अकेला विरह-काव्य है। आमतौर पर यह धारणा है कि प्रसाद जी आँसू में अन्य परम्पराओं से प्रभाव ग्रहण करते हैं, परन्तु सत्य यह है कि विरह के सूक्ष्मतम अनुभूतियों को अपने युग के अनुरूप भावाभिव्यक्ति देने में प्रसाद जी को अभूतपूर्व सफलता मिली है। प्रसाद जी ने अपने देश के गौरवमय साहित्य की ही परंपरा को आगे बढ़ाते हुए 'आँसू' के रूप में एक नई वस्तु प्रदान की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है – ' 'आँसू' वास्तव में है तो शृंगारी विप्रलम्भ, जिसमें अतीत संयोग-सुख की भिन्न-भिन्न स्मृतियाँ रह-रह कर झलक मारती हैं, पर जहाँ प्रेमी की मादकता

की बेसुधी में प्रियतम अपनी भावभूमि से उठकर ऊपर आ जाते हैं और संज्ञा की दशा में चले जाते हैं' जहाँ हृदय की तरंगें उस अनंत कोने को नहलाने लगती हैं, वहाँ वे आँसू उस अज्ञात प्रियतम के लिए बहते जान पड़ते हैं। फिर जहाँ कवि यह देखने लगता है कि ऊपर तो –

'अवकाश असीम सुखों से
आकाशतरंग बनाता
हँसता–सा छायापथ में
नक्षत्र समाज दिखाता।'

परन्तु –

'नीचे विपुला धरणी है
दु:खभार वहन–सी करती
अपने खारे आँसू से
करुणा–सागर को भरती।'

और इस चिर दग्ध दु:खी वसुंधरा को, इस स्वच्छ जगती को, अपनी प्रेमवेदना को, कल्याणी शीतल ज्वालामय उजाला देना चाहता है। वहाँ वे आँसू लोकपीड़ा पर करुणा के आँसू जान पड़ते हैं। पर वहीं जब हम कवि की दृष्टि अपनी सदा जगती हुई अखण्ड ज्वाला की प्रभविष्णुता पर इस प्रकार जमी पाते हैं कि –

'हे मेरी ज्वाला
तेरे प्रकाश में चेतन
संसार वेदना वाला
मेरे समीप होता है
पाकर कुछ करुण उजाला।'

तब ज्वाला या प्रेमवेदना की अतिरंजित या चिरारूढ़ भावना ही जो शृंगार की प्राचीन रूढ़ि है, रह जाती है। कहने का अर्थ यह है कि वेदना की कोई एक निर्दिष्ट भूमि न होने से सम्पूर्ण पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव नहीं निष्पन्न होता। यह एक दूरी तक ठीक है कि कवि आँसू के मूलभाव–विन्यास को अत्यंत ही शृंखलित रूप में प्रस्तुत करने में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाया है, पर यह कहना समीचीन प्रतीत नहीं होता कि समस्त पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव नहीं निष्पन्न होता, क्योंकि आँसुओं बरस पड़ने की पूर्ण कथा ग्रंथ में दी हुई है और लोगों की मंगल–कामना के मूल में कवि की पीड़ा विद्यमान है। परंतु कवि जनमंगल पर व्याख्यान नहीं देता है। श्री विनय मोहन शर्मा ने लिखा है कि – 'आँसू की आत्मा को देखने पर उसमें तारतम्य जान पड़ता है। अत: वह प्रबन्धमय है। पर 'आँसू' के अनेक पड़ाव ऐसे भी हैं कि उन्हीं पर मन को केंद्रित करने से प्रत्येक अपने में पूर्ण प्रतीत होते हैं। इस तरह 'आँसू' उस मोतियों की लड़ी के समान है, जिसका प्रत्येक मोती पृथक रहकर भी चमकता है और लड़ी के तार में गुँथकर भी आब देता है। वस्तुत: उसमें मुक्तक और प्रबंधत्व दोनों हैं।'

किसी भी कृति के शैली वैज्ञानिक अध्ययन के लिए जो प्रतिमान निर्धारित किये गए हैं उनमें प्रमुख हैं– 1. चयन 2. विचलन 3. समांतरता

चयन ही वह कसौटी है जो किसी रचनाकार को विशेष बनाती है। चयन काव्य की सृजन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण सोपान है। किसी काव्य की सृजन प्रक्रिया में अन्त: के भावों को शब्दों में ढालना एक जटिल और सूक्ष्म प्रक्रिया है। भाव अमूर्त से होते हैं उन्हें चयन मूर्त बनाता है। चयन ही यह निर्धारित करता है कि रचना का स्वरूप क्या होगा, रचना की शब्दावली कैसी होगी, रचना में भाव–प्रवाह कैसा होगा। यह चयन प्रक्रिया ही एक रचनाकार की विशिष्ट शैली निर्धारित करती है। इसी से हम किसी रचनाकार की रचना विशेष से ही पहचान लेते हैं।

'कभी–कभी रचनाकार का विशिष्ट चयन विशेष प्रिय हो जाता है और वह रचना में यथास्थान उसी संदर्भ में उसका आवर्तन करता है, जो उस रचनाकार की शैली का परिचायक तत्व कहलाता है।'(एन.ई. एंक्विस्ट, आन डिफाइनिंग स्टाइल, लीगुइस्टिक्स एंड स्टाइल, पृष्ठ 34)

यह चयन प्रक्रिया भाषिक और भाषिकेतर, दो स्तरों पर होती है। भाषिकेतर चयन में रचना की विषयवस्तु चयन, भाषा चयन, साहित्यिक शैली चयन, विधा चयन आदि महत्वपूर्ण होते हैं। जैसे प्रसाद जी ने अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए विरह संपृक्त विषय 'आँसू' चुना और इस करुण पुकार के लिए ठीक ही था कि उन्होंने अन्य विधाओं(निबंध आदि) का चयन न कर काव्य को चुना। जो भावाभिव्यक्ति के लिए सहज है। इसमें प्रसाद जी ने एक विशिष्ट शैली का प्रयोग किया है कि पढ़ने वाला एक धार में बहता हुआ क्रमश: करुण पुकार से अभिसिक्त हुए बिना नहीं रह सकता। यही प्रसाद जी की और 'आँसू' की विशेषता है। प्रसाद जी अपनी शैली से सहज ही सुष्क हृदय में भी रस धार की वर्षा करने में सफल हुए हैं–

'शीतल ज्वाला जलती हैं
ईधन होता दृग जल का।
यह व्यर्थ साँस चल–चल कर
करती हैं काम अनल का।।'
बाड़व ज्वाला सोती थी
इस प्रणय सिन्धु के तल में।
प्यासी मछली–सी आँखें
थी विकल रूप के जल में।।'

इसी प्रकार भाषिक चयन के प्रमुख पाँच स्तर शैलीविज्ञान के विद्वानों ने निर्धारित किये हैं– (1)ध्वनि चयन (2)शब्द चयन (3)रसचयन (4)वाक्यचयन (5)अर्थचयन ।

ध्वनि भाषा की लघुत्ताम इकाई है, जो भाषा में सार्थक ध्वनि–समूहों–शब्दों–के रूप में उपस्थित होती है। अनेक प्रकार की समानार्थक ध्वनियों में से अभीष्ट कलात्मक प्रभाव के अनुरूप किसी एक ध्वनि का निर्वाचन 'ध्वनि–चयन' कहलाता है, जो वस्तुत: शब्द–चयन के माध्यम से सम्पन्न होता है। (भोलानाथ तिवारी, शैलीविज्ञान, पृष्ठ 81)

प्रसाद ने 'आँसू' में भिन्न–भिन्न ध्वनियों का चयन भिन्न–भिन्न संदर्भों में किया है, जैसे–

'मेरे क्रंदन में बजती क्या वीणा, जो सुनते हो' (आँसू, पृष्ठ 10)

काव्यशास्त्र में ध्वनिकार ने भी शब्दों से निकलने वाली ध्वनि के अर्थ को ही सार्थक माना है, वाच्यार्थ को नहीं। इसी प्रकार आँसू से एक और उदाहरण देखा जा सकता है–

'झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नीरद माला' (आँसू, पृ.10)

तेज हवा, आँधी, तूफान, बिजली–गर्जन की ध्वनि के लिए ये पंक्ति प्रयुक्त सी लगती है। वास्तव में यह मानव मन के मनोभावों का प्रतिबिम्बन है। इंसान विरह में प्रेमी पर क्रोधित होता भी है, लेकिन थोड़ी ही देर में वे गरजने वाले बादल आँसू के रूप में बरस जाते हैं। काव्य में प्रत्येक शब्द किसी विशेष संदर्भ में प्रयोग होता है। प्रसाद जी शब्द–चयन विलक्षण हैं। आँसू रचना में 'समुद्र' शब्द के लिए ही उन्होंने पारावार, जलनिधि, रत्नाकर, सागर, जलधि जैसे पर्याय चुने हैं। जैसे–

'देखा बौने जलनिधि का शशि छूने को ललचाना'(पृ.27)

या

'यह पारावार तरल हो फेनिल हो गरल उगलता।'(पृ.9)

इसी प्रकार के शब्द चयन की भिन्नता से आँसू काव्य भरा पड़ा है। शब्द-चयन के बाद काव्य में वाक्य चयन की प्रक्रिया और महत्वपूर्ण होती है। एक ही बात अलग-अलग वाक्यों में कही जा सकती है। कई बार पूर्ण वाक्यों में, कभी अपूर्ण वाक्यों में या कभी सीधे-सीधे अभिधा में या लक्षणा और व्यंजना का सहारा लेकर बात कही जाती है। वस्तुत: उद्देश्य होता है सटीक भावाभिव्यक्तिय चाहे जिस प्रकार हो। जैसे - 'जीवन का लाभ नहीं वह वेदना पद्यमय छल में' आँसू का यह वाक्य जहाँ नकारात्मक है वहीं प्रसाद जी ने प्रश्नवाचक वाक्यों के सहारे यह पूँछा है कि - 'उस पार कहाँ फिर जाऊँ तम के मलीन अंचल में।'

काव्य की रचना प्रक्रिया में कई बार भावाभिव्यक्ति इतनी प्रगाढ़ होती है कि वह व्याकरणिक प्रतिमानों और काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का अतिक्रमण कर जाती है। यही विचलन है। शैलीविज्ञान काव्य के इसी विचलन का अध्ययन करता है। जिस प्रकार अवधूत कोटि के महापुरुषों का अवलोकन सामान्य जन की भाव भूमि से नहीं हो सकता। ऐसे महात्माओं को समझने के लिए उनके स्तर का ही भावबोध होना चाहिए। इसी प्रकार महान कृतियों के मूल्यांकन के लिए सामान्य पद्धति से परे होकर देखना पड़ता है। यही विचलन का अध्ययन है।

काव्य में विचलन कई स्तर पर हो सकता है। आँसू की इन पंक्तियों में प्रसाद जी ने ध्वनि सम्बन्धी विचलन का बड़ा ही सुंदर प्रयोग किया है-

'बिजलीमाला पहने सा फिर मुस्क्याता-सा आँगन में।
कामना-सिंध लहराता छबि पूरनिमा थी छाई।'(पृ.10)

यहाँ 'मुस्क्याता' के स्थान पर मुस्काता भी प्रयोग में लाया जा सकता था लेकिन मुस्क्याता में जो कर्ण-प्रिय सरस ध्वनि समाहित है वह वह मुस्काता में नहीं। यही बड़े कवि की पहचान है। इसी प्रकार 'आँसू' जैसे काव्य को रस-प्रवण बनाने में 'पूरनिमा' ही सार्थक है पूर्णिमा नहीं। अर्थ के स्तर पर भी आँसू में एक अनूठा विचलन देखा जा सकता है। महाकवि की उक्ति है -

'वेदना मधुर हो जाए मेरी निर्दय तन्मयता,
मिल जाए आज हृदय को पाऊँ मैं भी सहृदयता।'

आँसू की यह पंक्ति पढ़कर जलाने वाली वेदना भी मधुर लगने लगती है। और तन्मयता जो कि प्रेम का सहज गुण है कवि उसे निर्दय कहता है। क्योंकि विरह में अपने प्रियतम को निर्दय कहने में भी एक रस मिलता है। उलाहना का ही सुख गोपियों ने भ्रमरगीत में लिया है। प्रेम का सुख प्रेमी को निर्दय कहने में ही है। प्रेमी को दयालु कहना तो निरी चाटुकारिता है।

शैलीवैज्ञानिक अध्ययन में चयन और विचलन के बाद 'समांतरता' के अवलोकन को महत्व दिया जाता है। पश्चिमी शैलीविज्ञान में समांतरता के लिए 'पैरेललिज्म'(Parallelism) का प्रयोग किया जाता है। 'सामान्य प्रयोग में भाषा का सामान्य, अवक्र तथा अविचलित रूप प्रयुक्त होता है, जिसे पश्चिमी शब्दावली के आधार पर सामान्य भूमि या पुरावस्था अथवा पश्चभूमि कह सकते हैं। किन्तु काव्य-भाषा इससे भिन्न होती है। इसे नव्यव्यवस्था अथवा अग्रभूमि की आवश्यकता होती है। काव्य-भाषा नव्यव्यवस्था अथवा अपने को सामान्य भाषा से अलग करने के लिए विचलन, अप्रस्तुत विधान, तथा समनान्तरता का प्रयोग करती है। (भोलानाथ तिवारी, शैलीविज्ञान, पृ.101)

समानान्तरता से आशय है किसी रचना में समान या विरोधी भाषिक इकाइयों का प्रयोग। इसमें समान भाषिक इकाई की एक या अधिक बार आवृत्ति होती है अथवा दो या अधिक विरोधी भाषिक इकाइयाँ साथ-साथ आती हैं। अर्थात् इसमें समान या विरोधी संतुलन होता है और यह संतुलन समानान्तरता के कारण ही संभव होता है।(वही)

समानान्तरता बाह्य तथा आंतरिक होती है। बाह्य समानान्तरता शब्दालंकारों में होती है, जिसमें ध्वनि, आवृत्ति आदि मिल कर रूपगत समनान्तरता का निर्माण करती हैं। आंतरिक समानान्तरता अर्थालंकारों की होती है जिसके अंतर्गत अर्थ की समता, विरोध, न्यूनता, अनन्यता, तद्रूपता, शब्दों एवं पदों की आवृत्ति से भी समानान्तरता व्यक्त होती है। समानान्तरता के माध्यम से काव्य में चमत्कार उत्पन्न होता है तथा कविगत भावों, अनुभवों, विचारों, अनुभूतियों का सामान्यीकरण होता है।
(तुलनीय- पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', शैलीवैज्ञानिक समांतरता और भारतीय अलंकार - विवेचन, गवेषणा, 48, पृ.1-24)

'आँसू' में ध्वनि समानान्तरता रचना की प्रत्येक पंक्ति में अनुभव की जा सकती है। कविता में जब समान ध्वनियाँ मिलकर एक विलक्षण नाद सौंदर्य को उत्पन्न करती हैं। यथा -

'अवकाश, शून्य फैला है, शक्ति न और सहारा।'(श्, स् ध्वनियाँ)

और

'तिरती थी तिमिर उदधि में नाविक रू यह मेरी तरणी।'(त्,र् ध्वनियाँ)

इसीप्रकार 'आँसू' में रूपगत समानान्तरता सामान्यत: प्रत्येक छंद के अंत में देखी जा सकती है। यथा-

'चमकूँगा धूल-कणों में,
सौरभ हो उड़ जाऊँगा।
पाऊँगा कहीं तुम्हें तो,
ग्रह-पथ में टकराऊँगा।।'

और

'तुम सुमन नोचते सुनते
करते जाते अनजानी।' (पृ.22)

इसी प्रकार,

'इस हृदय-कमल का घिरना,
अलि-अलकों की उलझन में।
आँसू-मकरंद का गिरना,
मिलना विश्वास-पवन में।।'(पृ.78)

'आँसू' में प्रसाद जी ने अपने विशिष्ट भावों, अनुभवों, अनुभूतियों के वाचक शब्दों/उक्तियों के साथ-साथ समानान्तर शब्दों/उक्तियों का प्रयोग करके उन्हें सामान्यीकृत कर दिया है। यह अर्थ-समानान्तरता निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है-

1. 'हीरे-सा हृदय हमारा...' (पृ.53)
2. 'जल उठा स्नेह-दीपक सा नवनीत हृदय था मेरा' पृ.85
3. 'नचती है नियति नटी-सी'
   कंदुक-क्रीड़ा सी करती।'(पृ.52)

कवि अपने मूर्त/अमूर्त भावों, अनुभवों को प्रत्यक्षीकृत एवं सामान्यीकृत करता है। संदर्भगत समानान्तरता इस प्रक्रिया में कवि की सहयोगी होती है। इसे ऐसे समझ सकते हैं कि एक संदर्भ दूसरे समनान्तर संदर्भ से अंतर्क्रिया कर के अर्थगत व्यापकता प्राप्त करता है। 'आँसू' में भिन्न-

भिन्न संदर्भों की समनान्तरता को इस प्रकार समझा जा सकता है– जैसे 'आँसू' में प्रसाद जी ने 'मुख' के वर्णन करने के लिए इसके समनान्तर संदर्भ में कमल(पृ.37), चंद्र(पृ.5, 46, 47), विधु(पृ.30), और शशि(पृ.23) को लिया है। इसी प्रकार आँख के संदर्भगत समनान्तर मछली(पृ.73) और नीलम की प्याली(पृ.31) को लिया है। आसान भाषा में इसे हम ऐसे समझ सकते हैं कि जिन शब्दों के माध्यम से किसी शब्द विशेष के भिन्न–भिन्न वर्णन किये जा सकें। जैसे मुख कमल के समान है या चंद्र के समान है। इसी प्रकार प्रसाद जी ने अपने काव्य आँसू में अनेक संदर्भगत समानान्तर शब्दों का प्रयोग किया है। इन्हीं प्रयोगों के कारण छायावाद युग में प्रसाद जी अविस्मरणीय हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. प्रसाद, जयशंकर, आँसू, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000.
2. तिवारी, भोलानाथ, शैलीविज्ञान ,किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, 1977.
3. नगेंद्र, शैलीविज्ञान , नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1976.
4. पांडेय, शशिभूषण, 'शैलीवैज्ञानिक मानदंड और भारतीय अलंकार विवेचन,' गवेषणा , खंड 48, 1986, पृ.1–24.
5. पांडेय, शशिभूषण 'शीतांशु', शैलीविज्ञान: स्वरूप, प्रकार्य, एवं व्यापित, वीक्षा , 1973, चच. 41–94.
6. मिश्र, विद्या निवास, रीतिविज्ञान , राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1973.
7. विमल, कुमार, छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन , राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1970.
8. शर्मा, कृष्ण कुमार, शैलीविज्ञान की रूपरेखा , जयपुर, 1974.
9. शुक्ल, रामचंद्र, चिंतामणि , भाग 2, सरस्वती मंदिर, काशी, 2002.
10. श्रीवास्तव, रवींद्रनाथ, शैलीविज्ञान और आलोचना की नई भूमिका , केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 1972.

****